श्रीभगवान् उवाच=श्रीभगवान् ने कहा; **मयि**=मुझ में; **आवेश्य**=एकाग्र करके; **मनः**=चित्त को; **ये**=जो; **माम्**=मुझ को; **नित्य**=निरन्तर; **युक्ताः**=तत्परतापूर्वक; **उपासते**=भजते हैं; **श्रद्धया**=श्रद्धा से; **परया**=परम (गुणों से अतीत); **उपेताः**=युक्त; **ते**=वे; **मे**=मुझे; **युक्ततमाः**=परम उत्तम योगी; **मताः**=मान्य हैं।

अनुवाद

श्रीभगवान् ने कहा, हे अर्जुन! मेरे स्वयंरूप में मन को एकाग्र करके जो भक्तजन परम श्रद्धा सहित नित्य-निरन्तर मेरे भजन के परायण रहते हैं, उन्हें मैं परम सिद्ध योगी मानता हूँ।।२।।

तात्पर्य

अर्जुन की जिज्ञासा के उत्तरस्वरूप श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं कि उनके श्यामसुन्दर रूप में चित्त को एकाग्र करके जो श्रद्धा-भक्ति सहित उन्हें भजता है, वह योगी परम सिद्ध है। इस प्रकार विशुद्ध कृष्णभावना से भावित अन्तःकरण वाले से कोई सांसारिक कार्य नहीं बनता, क्योंकि श्रीकृष्ण स्वयं सब कुछ करते हैं। शुद्धभक्त भक्तियोग में नित्य तत्पर रहता है—कभी जप करता है, कभी कृष्णकथा का श्रवण-कीर्तन करता है; प्रसाद बनाता है अथवा श्रीकृष्ण के लिये पदार्थ लाता है तो कभी मन्दिर अथवा पात्रों का मार्जन करता है। इस प्रकार उसका क्षणमात्र भी कृष्णपरक क्रिया के बिना व्यतीत नहीं होता। ऐसा कर्म पूर्ण समाधिमय है।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।३।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।४।।

ये=जो; **तु**=किन्तु; **अक्षरम्**=इन्द्रियों से अतीत तत्त्व को; **अनिर्देश्यम्**=अकथनीय; **अव्यक्तम्**=निराकार को; **पर्युपासते**=पूर्ण रूप से उपासते हैं; **सर्वत्रगम्**=सर्वव्यापी; **अचिन्त्यम्**=मन-बुद्धि से परे; **च**=तथा; **कूटस्थम्**=सदा एकरस, मध्यस्थ; **अचलम्**=स्थिर; **ध्रुवम्**=नित्य; **संनियम्य**=वश में करके; **इन्द्रियग्रामम्**=सब इन्द्रियों को; **सर्वत्र**=सब में; **समबुद्धयः**=समान भाव वाले; **ते**=वे; **प्राप्नुवन्ति**=प्राप्त होते हैं; **माम्**=मुझे; **एव**=ही; **सर्वभूतहिते**=प्राणीमात्र के हित में; **रताः**=संलग्न।

अनुवाद

दूसरे जो इन्द्रियों को वश में करके और सब में समभाव रखते हुए परमसत्य के अव्यक्त, इन्द्रियों से अतीत, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, नित्य, अचल ब्रह्म स्वरूप की भलीभाँति उपासना करते हैं, वे प्राणीमात्र के हित में संलग्न योगी भी अन्त में मुझ को ही प्राप्त होते हैं।।३-४।।